Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

स्त्री अस्मिता के प्रश्न और आदिवासी कविताएं

डॉ. अनीता मिंज
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
दौलत राम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली।

सारांश- आदिवासी समाज में स्त्रियों की प्रारंभिक दशा काफी हद तक ठीक थी। कुछ सामाजिक अंधविश्वासों, बुरी आदतों आदि के कारण कभी-कभी स्त्रियों को सामाजिक एवं मानसिक यातनाएं झेलनी पड़ती थी। इसके बावजूद समाज में लैंगिक भेद नहीं था। किंतु कुछ दशकों से आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी घुसपैठियों, आर्थिक उदारीकरण आदि के कारण स्त्रियों के प्रति लैंगिक अपराधों में बढ़ोतरी हुई है। जिससे आदिवासी स्त्रियां अपनी अस्मिता की प्रति सचेत होने लगी हैं। आदिवासी स्त्रियों का आत्मबल पुरुषवादी वर्चस्व को तोड़ने की पहल करता है। वे पुरुष से 'स्त्री-मन' को 'स्त्री-दृष्टि' से देखने की बात करती हैं। प्रकृति की तरह स्त्री की 'सृजन-शक्ति' पुरुषत्व दंभ को ललकारती दिखलाई देती है। स्त्री-अस्मिता के ये सार्थक प्रश्न आदिवासी स्त्रियों की नारी चेतना को एक नई दृष्टि प्रदान करते हैं।

बीज शब्द : - आदिवासी कविता, स्त्री अस्मिता, बाहरी हस्तक्षेप, सामंतवाद, प्रतिरोधी चेतना, मुक्ति की आकांक्षा।

प्रस्तावना- भारतीय समाज में प्रारंभ से स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी वे हाशिए पर रही हैं। यही कारण है कि आज वैश्वीकरण की दौड़ में विभिन्न साहित्यिक चर्चाओं में 'अस्मिता-विमर्श' एक महत्वपूर्ण आंदोलन के रूप में उठ खड़ा हुआ है। आज' अस्मिता-विमर्श' हर क्षेत्र में एक चुनौती देता दिखाई पड़ रहा है। जो निजी पहचान को बचाए रखने की जद्दोजहद है। अस्मिता 'अस्मि' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है- 'मैं हूं' अर्थात् व्यक्ति या समाज की पहचान। उसके अस्तित्व, मूल्यों, संस्कृति, भाषा, अधिकार, आकांक्षाएं, सपने, लिंग आदि के बारे में दुनिया के समक्ष अपना दावा ठोकना।

पिछले कुछ दशकों से आदिवासी समुदाय या गैर आदिवासियों द्वारा इस समाज की पहचान, जीविका संकट, भाषा, संस्कृति, स्त्री की पहचान इत्यादि विषयों को लेकर लेखन एवं विमर्श जारी है। आदिवासी समाज में स्त्रियां हर कर्मक्षेत्र में पुरुष की भागीदार बनती हैं। घर-बार, हाट-बाजार, खेत-खलिहान हर क्षेत्र में स्त्रियां अपनी भूमिका निभाती हैं। पूर्वोत्तर में जहां 'मातृसत्ता समाज' है, वहां आदिवासियों में स्त्री 'सूर्य' की प्रतीक मानी गई है। जिसमें कठोरता की बजाय ब्रह्म का तत्व अधिक होता है- "प्रकृति के सूर्य जैसे शक्तिशाली प्रतिमान को स्त्री मानना एक मुकम्मल सोच को प्रतिपादित करता है। इसमें पुरुष की 'हेजेमनी' नहीं है।"[1] लेकिन इधर कुछ सालों से आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों के आगमन से आदिवासी समाज में स्त्रियों के प्रति लैंगिक भिन्नता, असमानता जैसे भेद पनपने लगे हैं। जो आदिवासी समाज के भीतर के सौंदर्य को नष्ट करने में तुले हुए हैं। जिससे आज आदिवासी स्त्री लेखन भी सजग हो चुका है। आदिवासी स्त्री 'स्त्री अस्मिता' के प्रश्न उठाने लगी हैं । क्योंकि

आदिवासी समाज में सामाजिक समानता उसके जीवन का मूल दर्शन है। स्त्री हो या पुरुष वे परस्पर एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आज आदिवासी समाज में 'स्त्री -अस्मिता' के प्रश्न क्यों उठ रहे हैं? इसके क्या कारण हैं? इसे जानने, समझने, परखने के लिए हमें आदिवासी समाज में झांकने की जरूरत है। जिसे हम विभिन्न संदर्भों के माध्यम से समझ सकते हैं। जिनमें प्रमुख हैं-

आदिवासी स्त्रियों की सामाजिक त्रासदी- आदिवासी समाज में स्त्रियां सामाजिक अज्ञानता, निराक्षरता एवं अंधविश्वासों के कारण शोषण व यंत्रणा की शिकार होती हैं। जल-जमीन, संपत्ति आदि के लालच में आज भी आए दिन स्त्रियों को डायन करार कर सरेआम दंडित किया जाता है। इस सामाजिक धुर्तता या मूर्खता के कारण स्त्रियों को प्रताड़ित करने में पूरा समाज इनका साथ देता है। अतः निर्मला पुतुल जैसी लेखिका स्त्रियों को व्यंग्यात्मक लहजे में अपने अधिकार की बात करने से मना करती हुई कहती हैं -

"हक की बात ना करो मेरी बहन
मत मांगो पिता की संपत्ति पर अधिकार
****
मिहिजाम के गोआकोला की
'सुबोधिनी मारंडी' की तरह तुम भी
अपने मगजहीन पति द्वारा भरी पंचायत में
डायन करार कर दंडित की जाओगी
मांझी-हाड़म, पराणिक, गुड़ित ठेकेदार, महाजन
और जान-गुरुओं के षड्यंत्र का शिकार बन"[2]

आदिवासी समाज के सामाजिक ह्रास का यह नतीजा है कि अब दिकुओ (बाहरी लोगों) के आगमन से इस समाज के मायने बदलने लगे हैं। पुरुषवादी सोच उन पर भी हावी होने लगा है। धनुष उठाने और 'जातीय टोटल' के कारण छप्पर जाने पर 'सजोनी किस्कू 'और 'प्यारी हेम्ब्राम' जैसी स्त्रियों को समाज द्वारा दंडित किया जाता है। इतना ही नहीं शारीरिक क्षति भी पहुंचाई जाती है। इस तरह की घटनाएं आज आदिवासी समाज के लिए चिंता का विषय है।

बाहरी आगमन से स्त्रियों पर गहराता संकट - आर्थिक उदारीकरण एवं विकास के अव्यवस्थित मॉडल के कारण आज आदिवासी संगठित क्षेत्र से विस्थापित किए जा रहे हैं। आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी आगमन से पूंजीवाद एवं बाजारवाद को भी बढ़ावा मिल रहा है। जिससे आदिवासी समाज के ऊपर अनेकानेक संकट के बादल मंडराने लगे हैं। प्रकृति के साथ-साथ आदिवासी गांव की लड़कियों की अस्मत पर भी खतरा गहराता जा रहा है। निर्मला पुतुल 'आखिर कब 'तक कविता के माध्यम से कहती हैं -

"आखिर कब तक ?
औरतें कब तक शिकार होती रहेंगी ?"[3]

घुसपैठिए दिकुओं के पैसे, ताकत, रुतबे आदि के आगे आदिवासी समाज लाचार नज़र आता है। आदिवासी लड़कियां अपनी ही जमीन में बलात्कार का शिकार होती हैं। पर भयवश कुछ भी कहने में असमर्थ होती हैं । 'किसी से नहीं कहा' कविता में निर्मला पुतुल कहती हैं -

"निर्वस्त्र किया वहीं बार-बार --
स्वीकार नहीं करने से तुम्हारी बात
मेरे बिस्तर पर करते रहे रोज
कईयों का बलात्कार"[4]

महिला सशक्तिकरण एवं महिला अधिकार की बातें शहरों तक ही सीमित हैं। गांव में कोई नियम कानून नहीं चलते। यही कारण है कि महिलाएं बार-बार इन बाहरी लोगों की ठगी का शिकार होती रहती हैं। रामदयाल मुंडा अपनी 'असहाय' कविता के माध्यम से कहते हैं -

"नदी, ना-ना करती रह गई
उस मनचले ने उसका लूट लिया पानी।"[5]

इस तरह की आपराधिक घटनाएं आदिवासी क्षेत्रों में आम सी हो गई है। जिसका निराकरण करना बेहद जरूरी है।

पुरुषों का स्त्रियों पर नियंत्रण व सामंती सोच- एक ओर स्त्रियां चांद पर परचम लहरा रही हैं वहीं दूसरी ओर पुरुषवादी समाज स्त्रियों पर अपना एकछत्र राज्य कायम रखना चाहता है। यही कारण है कि उनकी सामंती सोच स्त्री को बार-बार पीछे धकेलता रहता है। निर्मला पुतुल कहती हैं -

"मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में
प्रिय है तो बस मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने
जंगल के फल- फूल ,लकड़ियां
खेतों की उगी सब्जियां, घर की मुर्गियां
उन्हें प्रिय है मेरी गदराई देह,"[6]

आदिवासी समाज की लड़कियां अप्रिय होते हुए भी उनके सारी वस्तुएं उन्हें प्रिय लगती हैं। पुरुषवादी इस सामंती सोच का शिकार ना जाने कितनी आदिवासी महिलाएं आए दिन होती होंगी? जिसका जिक्र ना तो समाज करता है, ना ही कोई अखबार।

स्त्री, **मात्र-देह**- आज के बदलते परिवेश एवं जैविक विभिन्नता आदि के कारण आदिवासी स्त्रियों का बाहरी क्षेत्रों में काम करना मुश्किल होता जा रहा है। उच्चवर्गीय समाज के ठेकेदार आदिवासी स्त्रियों को मात्र देह की दृष्टि से देखने लगे हैं। उनकी गरीबी और भोलेपन का फायदा उठाने का अवसर कभी नहीं छोड़ते। उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन देकर अपना स्वार्थ पूर्ण करने में लगे रहते हैं। निर्मला पुतुल इस सच्चाई के बारे में कहती है -

"सुबह से शाम तक
दिनभर मरती-खटती सुगिया
सोचती है अक्सर ---
यहां हर पांचवां आदमी उससे
उसकी देह की भाषा में
क्यों बतियाता है ?"[7]

पुरुषों द्वारा देह भाषा में बात करने का ये तरीका केवल आदिवासी समाज की स्त्रियों को नापसंद नहीं है। स्त्रियां हमेशा घर से निकलने से पहले ये सोचती है कि आज न जाने उसका दिन कैसा बीतने वाला है?

प्रतिरोध के स्वर- समाज में पुरुष अपने आप को सर्वोपरि समझता है। लेकिन हर कदम में उन्हें स्त्री के सहारे की जरूरत पड़ती है। पुरुष स्त्री को जब जो चाहता है उसी रुप में इस्तेमाल करता है जैसे- खूंटी, घर, तकिया, चादर, डायरी, खामोश दीवार आदि। निर्मला पुतुल समाज में स्त्रियों के हक की बात करती हैं। वे स्त्रियों को प्रयोग की वस्तु मानने से इंकार करती हैं हुई कहती हैं -

"क्या हूं मैं तेरे लिए
एक तकिया कि
कहीं से थका मंदा आया
और सर टिका दिया - - -
चुप क्यों हो? कहो ना, क्या हूं मैं !
तुम्हारे लिए ??"[8]

निर्मला पुतुल की अधिकांश कविताओं में प्रतिरोध के स्वर सुनाई पड़ते हैं। वे सदियों के शोषण, अत्याचार की भर्त्सना कर पुरुषवादी मानसिकता को तोड़ने का प्रयास करती हैं। सामाजिक विडंबना है कि सृष्टि के रचाव-बसाव में जितना हाथ एक स्त्री का होता है उसका एकांश महत्व भी उसे नहीं दिया जाता। इस सामाजिक विडंबना के विरुद्ध आज स्त्री स्वयं मुखर होने लगी है।

अपने होने का अर्थ- सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन के साथ ही आदिवासी स्त्रियों की दैनिक जीवन चर्या में भी दिन-ब-दिन परिवर्तन आने लगा है। वे अब स्वयं अपनी पहचान ढूंढने में लगी हैं। स्त्रियां चाहती है कि अपना भी कुछ ऐसा हो, जो नितांत अपना हो। जिस पर अपना अधिकार हो, जिसे वह अपना कह सके। अपने होने का समूचित अर्थ पता चल सके। निर्मला पुतुल कहती हैं -

"धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिए मैं
दौड़ती, हांफती-भागती, तलाश रही हूं
सदियों से निरंतर/ अपनी जमीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ !!"[9]

आज आदिवासी समाज में स्त्री चाहती हैं कि उनकी अपनी जमीन हो। अपना अस्तित्व हो ।उसके इस संसार में आने का औचित्य हो ।स्त्री समाज में अपनी पहचान बनाना चाहती है।

मुक्ति की आकांक्षा- दैनिक जीवन की आवश्यकता की पूर्ति में आदिवासी स्त्री इतनी व्यस्त रहती थी कि अपने लिए समय निकालना भी उनके लिए भारी पड़ता था। इसके बावजूद वे कभी कोई शिकायत नहीं करती ।किंतु आज घर -बाहर एवं सामाजिक अपेक्षाओं के कारण आदिवासी स्त्रियों के अंदर विरोध के स्वर उभरने लगे हैं ।जिसकी गूंज नगाड़े की तरह दूर तलक सुनाई पड़ती है। अब स्त्रियां अपनी पहचान के लिए रूढ़िगत सामाजिक एवं जातिगत बंधनों से मुक्त होना चाहती हैं ।वह स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखना चाहती है ।'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री 'के माध्यम से निर्मला पुतुल कहती हैं_

" मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते
मुक्त होना चाहती हूं, अपनी जाति से - -
क्या है मात्र एक स्वप्न के
स्त्री के लिए घर , संतान और प्रेम
क्या है ?"**10**

आदिवासी स्त्रियां अब स्वयं अपनी मुक्ति की राह चुन ली हैं।वे अपने अंदर के तमाम विद्रोह ,प्रतिकार ,अपमान अवहेलना आदि को शब्दों के द्वारा व्यक्त करना चाहती हैं। वह किसी 'नारी आंदोलन 'व 'वाद 'का मुंह ताकने की बजाय लेखिका ग्रेस कुजुर की तरह 'कलम को ही तीर 'बनाने की बात कहती हैं । वहीं सरिता बड़ाइक की कविता' मुझे भी कुछ कहना है 'में वे लिखती हैं _

"चूल्हे बिस्तर की परिधि में
मुझे नहीं है रहना
गऊ चाल में चलकर नहीं है थकना
मन में भरी है कविता
मंजूर नहीं है थकना।"**11**

आदिवासी स्त्रियां भी अब प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो रही हैं ।वे अब विस्तार पाना चाहती हैं। अपने सपने बुनने का अवसर खुद तलाशना चाहती हैं ।जहां कोई दकियानूसी भेड़चाल का अनुसरण ना हो। नए सृजन की उन्मुक्त कामना उनकी रगों में समाहित दिखलाई पड़ता है।

स्त्रियों का आत्मविश्वास- आदिवासी समाज में स्त्रियां अपनी मुक्ति की राह स्वयं तलाशती हैं क्योंकि उनमें गजब का आत्मविश्वास पाया जाता है। उनमें जितना साहस एवं बल है उसके आगे समाज को क्षीण करने वाली हीन घटनाएं भी उनके आत्मबल को कमजोर करने में सक्षम नहीं होती ।आदिवासी स्त्रियां 'सिगनी दई' जैसी वीरांगना को बार-बार याद करती हैं। लेखिका ग्रेस कुजुर कहती हैं_

" और अगर अब तुम्हारे हाथों की उंगलियां थरथराई
तो जान लो/ मैं बनूंगी एक बार और
सिगनी दई ।"**12**

सिगनी दई की याद में 'जनी शिकार 'की प्रथा शुरू हुई, जिसमें स्त्रियां अपनी वीरता का प्रदर्शन करती हैं। ग्रेस कुजूर कहती हैं 'सच बहुत जरूरत है, झारखंड में फिर एक बार जनी शिकार की'। ताकि स्त्रियों के अंदर एक आत्मविश्वास जगे। आदिवासी स्त्रियां अपने बुलंद इरादों के कारण पुरुषत्व बोझ में दबना नहीं चाहती ,न ही नारी जागरण जैसे किसी सहारे को ढूंढती हैं ।उनके अंदर नवोन्मेष की आकांक्षा दिखाई पड़ती है। ग्रेस हुजूर अपनी कविता 'बौना संसार 'में नारी मन की व्यथा के साथ ही आन्तरिक जिजीविषा को भी अभिव्यक्त करती हैं_

"तुम कैद कर देते हो उसे
गमले में किसी बोनसाई की मानिंद

इसके बावजूद वह फूलती है, फलती है
और तुम उसके इस बौनेपन में कितनी खुश हो
- - - --- ---+
जब- जब औरत को
धरती के नीचे दबना पड़ा है
तब -तब अंकुरित हुई वह।" **13**

स्त्री मन की अदम्य जिजीविषा विपरीत परिस्थिति में भी फलने -फूलने का अवसर तलाश लेती है। नारी शक्ति की बात रोज केरकेट्टा भी अपनी कविता' स्त्री' में करती हुई कहती हैं _

"स्त्री पानी है/ उसे पानी- पानी मत करो
उसे मत छोड़ो/ वह सब को पानी पिला सकती है
यदि ठान ले तो।"**14**

नारी अस्मिता के प्रश्न- आज के उपभोक्तावादी युग में पुरुष का वर्चस्व बढ़ गया है। स्त्री की कोख़ के बगैर जिनका इस धरती पर आना असंभव है वे स्त्री को देह मात्र समझने लगे हैं। ऐसे लोगों को' निर्मला पुतुल 'एहसास दिलाना चाहती हैं कि आपकी इन मजबूत जड़ों का इतिहास क्या है? आखिर इन्हें पनपने का अवसर किसने दिया? इसे जानने की कोशिश कभी आप लोगों ने की है? वे कहती हैं _

"तन के भूगोल से परे /एक स्त्री के
मन की गांठें खोलकर/ कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर खौलता इतिहास ?
उसके अंदर वंशबीज बोते
क्या तुमने कभी महसूसा है
उसकी फैलती जड़ों को अपने भीतर ?"**15**

पुरुषवादी वर्चस्व को पूरी तरह ललकारती हुई निर्मला पुतुल कहती हैं_

"क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्तो का व्याकरण ?
बता सकते हो तुम ?
एक स्त्री को स्त्री दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा ?"**16**

नारी अस्मिता की ये प्रश्न वे इसलिए भी उठाती है क्योंकि आदिवासी स्त्रियों ने अपने समाज में आए हर संकट में अपनी भागीदारी दिखाई है।चाहे वह कोई भी क्षेत्र रहा हो। आदिवासी लेखिका वासवी किड़ो कहती हैं _"आदिवासी अस्मिता का प्रश्न हो या जंगल ,जमीन पर परंपरागत हक ,सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की रक्षा का सवाल या फिर साम्राज्यवाद विरोध की अगुवाई का मुद्दा, आदिवासी स्त्रियों ने उलगुलान (विद्रोह)के बराबर अपनी भूमिका निभाई है ।"**17** आदिवासी स्त्रियां हर मुद्दे

पर अपनी बात रखना जानती हैं। नारी अस्मिता की बात तमाम आदिवासी स्त्री लेखिका अपने साहित्यिक विधाओं द्वारा करती हैं लेकिन सुदूर गांवों में अब भी नारी अस्मिता के प्रति चेतना आनी बाकी है।

निष्कर्ष - आदिवासी समाज में स्त्रियां हर कर्मक्षेत्र में पुरुषों का सहयोग करती हैं। किंतु बदलते सामाजिक परिवेश ,आर्थिक उदारीकरण, पूंजीवाद का विस्तार दिकुओं के घुसपैठ आदि के कारण आदिवासी समाज में भी कुछ विकृतियों आज घर कर रही हैं । लैंगिक भिन्नता के कारण स्त्री- पुरुष के बीच एक दुराव दिखाई पड़ने लगा है । जिससे आदिवासी स्त्रियां सामाजिक ,शारीरिक ,मानसिक हिंसा का शिकार होने लगी हैं।इससे छुटकारा दिलाने की जिम्मेदारी स्वयं आदिवासी स्त्रियों ने ले लिया है। आदिवासी स्त्रियां अपनी पहचान तलाशने में बेचैन हैं। वे सामाजिक व्यवस्था को खुली चुनौती देती हैं।वे किसी वाद या संस्था का इंतजार नहीं करती ।आदिवासी स्त्रियों के अंदर का आत्मबल उन्हें अन्य समाज की स्त्री चेतना से अलगाता दिखलाई पड़ता है ।स्त्री मुक्ति के लिए स्वयं को जागृत करने से बढ़कर और कुछ नहीं है ।उनके अंदर सामाजिक व्यवस्था को बदलने कि अकुलाहट है जो नारी चेतना को एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

1. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन : एक उभरती चेतना , स्पेस पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,सं.-जनवरी **2018,** पृष्ठ संख्या-**12**
2. निर्मला पुतुल ,नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं.-**2012,** पृ. सं.-**24**
3. रमणिका गुप्ता ,कलम को तीर होने दो ,साहित्य अकादमी ,नई दिल्ली,सं.-**2015,** पृष्ठ संख्या-**213**
1. वही , पृष्ठ संख्या-**220**
2. वही , पृष्ठ संख्या-**42**
3. निर्मला पुतुल नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द ,भारतीय ज्ञानपीठ ,नई दिल्ली,सं.-**2012,** पृष्ठ संख्या-**73**
4. वही, पृष्ठ संख्या-**81**
5. वही, पृष्ठ संख्या-**28**
6. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली ,पृष्ठ संख्या-**30**
7. वही पृष्ठ संख्या-**9**
8. नन्हे सपनों का सुख, सरिता बड़ाईक , रमणिका फाउंडेशन, नई दिल्ली ,सं.-**2013,** पृष्ठ संख्या-**108**
9. रमणिका गुप्ता ,कलम को तीर होने दो,साहित्य अकादमी , नई दिल्ली,सं.-**2015,** पृष्ठ संख्या-**42**
10. वही, पृष्ठ संख्या-**91**
11. वही, पृष्ठ संख्या-**248**
12. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली,सं-**2012,** पृष्ठ संख्या-**8**
13. वही, पृष्ठ संख्या-**8**
14. उलगुलान की औरतें-आदिवासी स्वर और नई शताब्दी-खंड-**2,**युद्धरत आम आदमी विशेषांक, रमणिका फाउंडेशन,नई दिल्ली,सं-**2017,** पृ.सं.-**363**